i:pe v/;k;

भरतनाट्यम् में करण का प्रयोग तथा सम्भावनाएँ

शास्त्रों के आधार पर मिलने वाले सारे तथ्यों एवं प्रमाण के अनुसार करण एक सबसे प्रौराणिक शैली है, इसमें कोई दो मत नहीं है। जैसे पूरा विश्व परिवर्तनशील है, वैसे ही कलाओं में सदियों से परिवर्तन होता रहा है और इस परिवर्तन के चलते नाट्य से नृत्य में अपना अलग स्वरूप धारण किया था, जिसमें विविध नृत्य शैलियों ने जन्म लिया। जिसमें नाट्य अर्थात अभिनय का अंग जुड़ा और नृत्य शब्द की उत्पत्ति हुई। जहाँ नाट्य में केवल नृत्त हुआ करता था, वहाँ सदियों बाद नृत्य तथा नृत्त दोनों शब्दों ने मिलकर एक नवीन स्वरूप धारण किया, जो कला जगत् में शास्त्रीय नृत्य के नाम से जाना गया एवं कालान्तर में विभिन्न शास्त्रीय नृत्य शैलियों ने जन्म लिया। इनके स्वरूप का आधार अलग–अलग भौगोलिक परिस्थिति, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों पर आधारित है, जहाँ भौगोलिक परिस्थितियों पर आधारित नृत्य के पद संचालन होते हैं। वस्तुतः सामाजिक या धार्मिक रीति–रिवाजों के अनुसार हस्त साहित्य लिखा जाता है और नृत्य कला विकसित होती है। प्रत्येक नृत्य शैली के पीछे उस स्थान की मान्यताएँ एवं पौराणिक कथा जुड़ी होती है। उस स्थान के देवी–देवता पर वह आधारित रहती है, वहीं की भौगोलिक संसाधन से वेश–भूषा बनती है और संगीत के संसाधन भी उसी पर आधारित रहते हैं। (वर्षों पहले जब भारतवर्ष हुआ करता था तब नाट्यशास्त्र को एक सर्वसामान्य शास्त्र माना गया था और नाट्य में

होने वाले सारे प्रयोग नाट्यशास्त्र तथ्यों पर आधारित होते थे।) नाट्यशास्त्र में वर्णित दशरूपक के बारे में भी जो माहिती उसे बताई गई है उसी पर आधारित कई स्वरूप आज भी जीवन्त हैं। वो अपने–अपने प्रदेशों में विकसित हुए हैं और प्रदेशों की भाषा, वेशभूषा, कथाएँ, संगीत इन सब से जुड़े हुए हैं। भारत में प्रचलित जो आठ शास्त्रीय नृत्य शैली हैं, वह अलग–अलग समय में अलग–अलग प्रदेश में विकसित हुई। इन आठ शास्त्रीय नृत्य शैली में भरतनाट्यम् नृत्य शैली को अनेक प्रमाणों को देखते हुए सबसे पौराणिक शैली माना जाता है। भरतनाट्यम् का सबसे प्राचीन स्वरूप दासीअट्टम् के नाम से जाना जाता है। देवदासियाँ अपने आराध्य के मन्दिर में उनकी मूर्ति के समक्ष नृत्य किया करती थीं, तब इस नृत्य शैली की प्रस्तुति में काफी अन्तर था। उस समय के संगीत, वाद्य, वेश–भूषा तथा साहित्य भी अलग हुआ करते थे, जो कि दासीअट्टम् ईश्वर की आराधना का एकमात्र मार्ग माना गया था, अतः उस समय देवदासियाँ केवल मूर्ति के समक्ष नृत्य किया करती थीं और उसका आशय राजा या आम प्रजा को लुभाने का कार्य नहीं होता था।

जैसे ही यह नृत्य राज–दरबारों में गया वो सदीर कचेरी के नाम से जाना गया। कचेरियों में जब यह नृत्य होने लगा, तो उसके प्रस्तुतिकरण में काफी अन्तर आया, दरबारों में जब इसकी प्रस्तुति होती थी तब विशाल कक्ष में कई दरबारियों के समक्ष उसे पेश किया जाने लगा। जब उसके साहित्य, संगीत, वाद्य, वेशभूषा और पद्धति में भी काफी अन्तर आया। समय के चलते धीरे–धीरे जब यह नृत्य आम जनता के लिए बड़े चौगानों में उत्सवों के दौरान किया जाने लगा। सैकड़ों की भीड़ के लिए जब उसका प्रस्तुतिकरण होने लगा, तब उसको उपयोग में लिए जाने वाले सटीक व सूक्ष्म भावों का स्थान

(Loud Movement) विशाल स्वरूप में होने लगा, जो सैकड़ों की भीड़ में दिखाई देने लगे।

किसी एक नर्तकी के जगह समूह का स्थान लेने लगा और समूह नृत्य करने के कारण उसके अंग संचालन, नृत्य संयोजन में विविधता आई, जिसके पीछे एक भक्ति भाव रहता था, उस जगह ख्याति में और सामान्य लोगों के मनोरंजन के स्वरूप में रखा जाने लगा, जो धीरे–धीरे आध्यात्म का मार्ग मनोरंजन का साधन बनने लगा। फिर समय के साथ यह नृत्य मंच पर आया और दर्शकों के अनुसार मंच जानने वाले संसाधनों के अनुसार प्रकाश, ध्वनि, उसके अनुसार उसकी प्रस्तुति में संयोजनों में, वेशभूषा, संगीत के वाद्यों में, साहित्यों में अन्तर दिखाई देने लगा, जो दासीअट्टम् नृत्य आज हम देख पा रहे हैं, यदि उसकी यात्रा देखी जाये तो दासीअट्टम् से लेकर भरतनाट्यम् तक आज गहन अन्तर आया है, जो पहले शास्त्रों से जुड़ा हुआ नृत्य हुआ करता था वो आज शास्त्र से काफी अलग स्वरूप में दिखाई देता है।

देवदासी का इतिहास अगर देखा जाये तो उसके अनुसार उस समय के राजवियों के द्वारा उन मन्दिरों का देख–भाल राजाओं के द्वारा की जाती थी। जिस राज्य में देवदासियों की संख्या अधिक होती थी, उसे ज्यादा समृद्ध माना जाता था। देवदासियों के अपने लक्ष्य माने गए हैं। यह देवदासियाँ न केवल नृत्य में साहित्य, संगीत एवं बौद्धिक विमर्श करने तक में निपुण में हुआ करती थीं, उनका बौद्धिक स्तर इतना उच्च होता था कि राज्य में आने वाली हर परिस्थितियों या समस्या के लिए उनके मन्त्रीमण्डल में देवदासियों को भी रखा जाता था। कई तर्क–वितर्क का वह हिस्सा भी बनती थी। राजाओं के समय में लिखी गई हस्त पत्रों से उनके द्वारा उनके बनाए गए मूर्तियों एवं अन्य

स्थापत्यों में, गुफाओं में पाए जाने वाले चित्रों, मूर्तियों के प्रमाणों से यह जान सकते हैं कि नाट्यशास्त्र का अध्ययन उस समय की नर्तकियों द्वारा किया जाता था या वो उनके तथ्यों को भली भांति जानती थीं और वह नृत्य शैली उस पर आधारित होती थी। समय बदलते इस नृत्य में आए परिवर्तन के कारण भरतनाट्यम् में तथ्यों के उपलक्ष्य में कई परिवर्तन देखने को मिलते हैं। नाट्यशास्त्र के बाद लिखे गए अन्य शास्त्रों का प्रभाव भी भरतनाट्यम् पर पड़ा। वर्तमान समय में देखा जाये तो भरतनाट्यम् नाट्यशास्त्र की अपेक्षा अभिनयदर्पण पर आधारित है और इस प्रकार धीरे–धीरे नाट्यशास्त्र के तत्वों के जगह अन्य ग्रन्थों का समावेश भरतनाट्यम् में होता गया, किन्तु आज फिर से भरतनाट्यम् ही नहीं लेकिन हर शास्त्रीय नृत्य अपने मूल की तरफ जाती हुई प्रतीत हो रही है। वर्तमान में कई गुरुओं ने, इतिहासकारों ने, टीकाकारों ने तथा साहित्यकारों ने अपने–अपने प्रयास किए कि नाट्यशास्त्र के तत्वों को एक बार फिर उजागर किया जाए। नृत्य के स्वरूप में बताई गई (करण) जो आज कई सदियों पहले इस नृत्य का अभिन्न अंग हुआ करती थीं, जो आज भी हमें स्थापत्यों और साहित्यों से प्राप्त होते हैं। 'करण' शैली को लेकर विद्वानों ने संशोधन किए, जिसमें पद्मभूषण डॉ0 पद्मा सुब्रह्मण्यम् का नाम सर्वोपरि है, उन्होंने अपने जीवन के 40 वर्ष तक इस नृत्य शैली पर संशोधन किया तथा उसे पुर्नजीवित किया एवं स्वरूप प्रदान किया। उन्होंने कई इतिहासकार, साहित्यकारों के साथ मिलकर मन्दिरों के दीवारों पर लिखी गई प्राचीन लिपि को समझकर नाट्यशास्त्र के तत्वों का अर्थ समझकर इस नृत्य शैली का पुर्नगठन किया, उनके पास से सीखे हुए शिष्यों का एक बड़ा वर्ग है, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ इस शैली को आगे बढ़ा रहा है।

नृत्य क्षेत्र में ऐसे कलाकार न केवल इसे आगे बढ़ा रहे हैं किन्तु अपनी समझ से इसमें प्रयोग कर भरतनाट्यम् नृत्य शैली में नाट्यशास्त्र का उपयोग किया जाने लगा है। डॉ0 पद्मा जी के अलावा डॉ0 पद्मभूषण कनक रेले जी ने भी अपने समझ से अपने नृत्य शैली के अनुरूप इन करणों का पुर्नगठन किया है। वे भी अपने शिष्यों के द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी इन तत्वों को सीखा रहें हैं और आगे बढ़ा रहे हैं। कई विद्वान् देशी करण को लेकर नए–नए प्रयोग कर रहे हैं, करण अंगहार तथा पिण्डीबन्ध के स्वरूपों को भरतनाट्यम् नृत्य शैली में पुनर्गठन करने के कारण इस शैली के स्वरूप में बदलाव आए हैं, जो कई विद्वानों द्वारा स्वीकृत भी हुए हैं और अस्वीकृत भी हुए हैं। इस शोध कार्य का आशय यह है कि वर्तमान समय में नाट्यशास्त्र के करण तथा अन्य तत्वों का प्रयोग भरतनाट्यम् में करने वाले कलाकारों के अध्ययन, उनके समक्ष तथा सम्भावनाओं के ऊपर प्रकाश डाला जाए। कई परिवर्तनों से गुजरते हुए उसे कई बार स्वीकृत या अस्वीकृत होना पड़ा होगा। कई विद्वानों के मत–मतान्तर पहले भी रहे होंगे। किन्तु वस्तुतः आज भरतनाट्यम् नृत्य का जो स्वरूप हमारे पास है, उसमें धीरे–धीरे नाट्यशास्त्र का प्रभुत्व बढ़ने लगा है। नृत्य क्षेत्र के अनेक विद्वान्, गुणीजन, नृत्यकार इस बात की पुष्टि करते हैं। नाट्यशास्त्र में जो 16 आकाशचारी और 16 भूमिचारी का वर्णन किया गया है, उन चारियों का प्रयोग अब वर्तमान में नाट्य या महत्तम नृत्य शैलियों में नहीं किया जाता है, लेकिन कुछ चारियाँ ऐसी हैं, जिनके प्रयोग भरतनाट्यम् में नृत्य या अभिनय के लिए किया जाए तो वह भरतनाट्यम् के ही त्तवों के सापेक्ष विविधता पूर्ण दिखाई पड़ेंगे। उसी प्रकार विध्यवाचारी, एलकाक्रीड़िता, बद्धा इन चारियों का नृत्त तथा अभिनय दोनों ही पक्षों में उपयोग किया जा सकता है।

उरूद्वृत्ताचारी को यदि भरतनाट्यम के कुछ मिलते–जुलते आडवु के वैविध्य के लिए उपयोग में लिया जाए तो उन आडवुओं के स्वरूप में भी वृद्धि हो सकती है। जनितावचारी जिसका भरतनाट्यम के नृत्य में होता ही है, किन्तु जिसका शास्त्रीय नाम ज्यादातर लोग जानते नहीं है, उस जनिता के वैविध्य प्रभर पद संचालन का प्रयोग भरतनाट्यम् में किया जाए तो वह और निखर सकता है। स्यन्दिता अपस्वन्दिता का प्रयोग भी कई बार भरनाट्यम् में किया जाता है, किन्तु उसे यदि विधिवत किया जाए तो उसका सौन्दर्यबोध अलग ही प्रतीत होता है।

समोत्सरित तथा मतल्ली का प्रयोग भी सौन्दर्यतया लावण्य तथा लास्य दिखाने के लिए भी प्रयोग में लिया जाता है। आकाशचारी में अतिक्रान्ता, अपक्रान्ता, पार्श्वक्रान्ता, ऊर्ध्वजानु तथा सूची जैसी आकशचारियों को विविध वस्तुओं के अभिनय के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। नुपूरपादिका तथा अतिक्रान्ता से लेकर दोलापाद तक विविध आकाशचारियों का उपयोग विविध वस्तुओं तथा परिस्थितियों को दिखाने के लिए किया जा सकता है।

आविद्धा, अक्षिप्ता तथा विद्युतभ्रान्ता नृत्य के लिए भी की जा सकती है। ललाट से लेकर भुजंगत्रासिता अभिनय दिखाने के लिए प्रयुक्त की जा सकती है। मृगप्लुता भी मृग के अभिनय को दर्शाती है तथा भ्रमरी का प्रयोग नृत्य के लिए उपयोगी हो सकता है। इस प्रकार भ्रमरी तथा आकाशचारी का उपयोग भरतनाट्यम् में प्रयुक्त आडवुओं के अन्दर या अभिनय पक्ष के अन्दर किया जाए तो वह स्वरूप बनाए रखने के उपरान्त सुन्दरता बढ़ा सकता है।

करणों की हम बात करें तो जब 'करण' का संयोजन किया गया होगा या नाट्यशास्त्र में उसका वर्णन किया गया तब भरतनाट्यम् जैसी नवीन नृत्य शैलियों का उद्भव नहीं हुआ था, इसलिए इस तथ्य को मानना उचित होगा कि नृत्य के समय केवल करणों का चलन था, तथा इस सीमारेखा में बंध कर ही किसी भी नवीन शैली का जन्म हुआ होगा। समय के साथ परिवर्तन होते–होते किसी एक ढांचे में ढली हुई संरचना को भरतनाट्यम् नाम दिया गया होगा। समय के अन्तराल में भरतनाट्यम् नृत्य शैली अन्य शैलियों से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रही।

नाट्यशास्त्र में वर्णित पूर्वरंग विधान में पुष्पांजलि का महत्व पूर्ण रूप से बताया गया है, और पूर्वरंग विधि के अनुसार पुष्पांजलि रंगमंच पूजन की भावना से हर एक दिशा, देवी–देवता, ब्रह्मा तथा सहृदयजनों को प्रणाम करना होता था। कालान्तर में कुछ परिवर्तन पुष्पांजलि में भी आए किन्तु पुष्पांजलि के पीछे का आशय वैसे ही रहा, उसी पुष्पांजलि के संदर्भ में नाट्यशास्त्र में पहला करण का वर्णित है, जिसमें तलपुष्पपुट हस्त रख कर विविध चारियों का प्रयोग करके पुष्पांजलि नृत्य की सौन्दर्यता में बढ़ोत्तरी हो सकती है।

अभिनयदर्पण की अपेक्षा नाट्यशास्त्र नृत्य के तत्वों का प्रमाण अत्यधिक मिलता है, जैसे कि शिरोभेद, नृत्तहस्त, संयुक्त तथा असंयुक्त हस्त का प्रयोग भी मुख्यतः किया जाता है। जैसे कि शुकतुण्ड, कटकामुख, अलपद्म, डोलाहस्त जैसे हस्तों का प्रयोग नृत्त में भी किया जा सकता है। उदाहरण ''तई हत तई हित'' आडवु में यदि ''निकुट्टकम्'' का प्रयोग किया जाए। तत तई ताम (शिखर आड़वु) आडवु में ''स्वस्तिक'' करण का प्रयोग किया जाता है तो वह भी नृत्य के लिए उपयुक्त साबित हो सकता है। विभिन्न करणों में

पाषणी तथा अग्रतल एवं सूचीपाद का भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रयोग किया जाता है, जबकि भरतनाट्यम् में पाषणी तथा अग्रतल के प्रयोग में इतनी विभिन्नता नहीं मिलती। उदाहरण कुदिट्टमिट्ट आडवु में एक ही प्रकार के पद संचालों का प्रयोग किया जाता है, जिसे अग्रतलपर्शिणी का प्रयोग किया जा सकता है। यदि अर्धरेचितकम्, अर्धनिकुट्टकम् में केवल पाषिणी का लगातार प्रयोग होता है, जिस प्रकार विविधता आती है, उसी प्रकार आडवुओं में पूरे पंजे को भिन्न–भिन्न मात्राओं के अनुसार प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार पार्ष्णी का प्रयोग भी इन करणों में देखने को मिलता है, जबकि भरतनाट्यम् के कुदिट्टमिट्ट में केवल एक बार अग्रतल तथा एक बार पाष्णी का प्रयोग किया जाता है। यदि इसमें विविधता लाई जाये तो कुदिट्टमिट्ट आडवु के सौन्दर्य की सम्भावना और बढ़ जाती है।

चाषगति तथा विच्यवा जैसी भूमिचारी में अग्रतल का प्रयोग जिस प्रकार किया जाता है वैसा प्रयोग भरतनाट्यम् के किसी भी आडवु में दखने को नहीं मिलता है। भरतनाट्यम् के 'उदघट्टित' या ''त्त तेई ताम्' जिस प्रकार अग्रतल का प्रयोग होता है, उसके जगह विच्यवाचारी के समान पद संचालन किया जाए तो भी उन आडवुओं में विविधता मिलने का आशंका है। नाट्यशास्त्र में वर्णित नृत्त हस्तों का उपयोग भी बहुत ही नहिवत्त प्रमाण में भरतनाट्यम् में किया जाता है, जबकि नाट्य की अपेक्षा नृत्य के स्वरूप में नृत्य पक्ष उजागर करने के लिए नृत्य हस्त का प्रयोग किया जाना चाहिए। इन नृत्य हस्त के प्रयोग से भरतनाट्यम् के नींव स्वरूप आडवु में उसका प्रयोग किया जा सकता है।

आकाशचारी में से कई चारियों का प्रयोग शिव के उद्धतनृत्य के स्वरूप को दिखाने के लिए वर्षों से होता आ रहा है। भगवान शिव के साथ ताण्डव में से कुछ ताण्डव जिसमें उद्धतपाद संचालन उपयुक्त है या दूसरे शब्दों में पैरों को उठाना क्षिप्त अथा फेंकना अथवा पैरों को घुमाना इत्यादि पाद संचालनों का प्रयोग किया जाता है, उनमें ये महत्तम आकाशचारियों का प्रयोग किया जाता है, किन्तु उसके मूल स्वरूप या नाम से ''वर्तमान नृत्य'' जगत् अनभिग्न हैं। उद्घटित आडवु जिसकी विविधता भरतनाट्यम् नृत्य की हर शैली में देखने को मिलती है, जिसके शोल्ल ज्यादातर ''तत् धित ता'' ''तत् तयुम तत् ता तै'' जैसे होते हैं, इसके एड़ी को भूमि पर पटकने तथा पैर को क्षिप्त अर्थात् हवा में फेंकने की क्रियाएं की जाती है। चाषगति चारी का प्रयोग होते–होते कालान्तर में बदलता गया हो, ऐसा प्रतीत होता है। जब ''तइया तईही'' आडवु को किया जाता है तब वह चाषगति के साथ मिलता हुआ लगता है।

उसी प्रकार पार्वती के लास्य को दिखाने वाले या अन्य किसी पात्र जैसे राधा या अन्य विभिन्न नायिकाओं को दिखाने के लिए भूमिचारी का प्रयोग किया जाता है, जिनके मूल स्वरूप से वर्तमान नृत्यकार अंजान होते हैं, बिना उसके नाम को जाने ही इन चारियों के प्रयोग भिन्न–भिन्न स्वरूपों में किए जा रहे हैं, क्योंकि ये आकाश चारियाँ सालों साल से प्रयोग में लिए जा रहे हैं। समय के चलते उसके मूल स्वरूप में भी परिवर्तन आते रहे हैं तथा उससे जुड़ी जानकारियां या ज्ञान भी एक सीमित वर्ग के पास रहा है, किन्तु मन्दिरों की दीवारों पर बनाई गई नृत्य मूर्तियाँ या चित्रकला की विभिन्न प्रमाणों के अनुसार तथा साहित्य में वर्णित लावण्ययुक्त भाव–भंगिमाओं के वर्णन से इन चारियों में से जाने–अनजाने चयन करते आ रहे हैं तथा उसका प्रयोग

भरतनाट्यम् नृत्य शैली में होता रहा है तथा आज भी हो रहा है। कई बार नाट्यशास्त्र के तत्वों को जानने वाले विद्वान् यह पता लगा लेते हैं कि जिन भी तत्वों का प्रयोग किया जा रहा है वह उपयुक्त होते हैं या नहीं। कभी–कभी जाने–अनजाने भरतनाट्यम् में प्रयुक्त की गई चारियाँ उसके विनियोग के विपरीत अर्थ के लिए भी प्रयोग किए जाते हैं, जो कि नाट्यशास्त्र के अनुसार योग्य नहीं होती।

कई वरिष्ठ नृत्यकार, गुरुओं, कलाकार के साक्षात्कार से यह बात स्पष्ट हो रही है कि पिछले कुछ वर्षों में नाट्यशास्त्र को लेकर नृत्य जगत् में एक जागृति आई है तथा उसे जानने–समझने का प्रयास हो रहा है और उसी आधार पर ''वर्तमान भरतनाट्यम् में होने वाले नाट्यशास्त्र के प्रयोग प्रमाणित साबित हुए हैं। भरतनाट्यम् से शिक्षित तथा अपने–अपने कार्य क्षेत्र में अपनी प्रतिभाओं से कार्य कर रहे कलाकारों ने या नृत्यकारों ने नाट्यशास्त्र के तत्वों को खासकर करणों को समझकर के अपने–अपने कल्पनाशक्ति से अपने प्रस्तुतियों में समाविष्ट किया है और इसी का कारण वह वो नृत्यकार जो नाट्यशास्त्र के करणों का प्रयोग अपने प्रस्तुति में कर रहा है, उसके प्रस्तुति में अन्तर पाया जाता है, साथ ही इन कलाकारों के नृत्य को देखकर भरतनाट्यम् क्षेत्र में छिपी हुई सम्भावनाएँ स्पष्ट होती दिखाई दे रही है।

आज एक बड़े वर्ग में नाट्यशास्त्र के करणों की शिक्षा, समझ तथा प्रयोग को लेकर एक नई जागृति व चेतना दृष्टिगोचर होती है। कई वर्ग में नृत्य के शिक्षक, समविद्यार्थी, शोधकर्ता, टीकाकारों का समावेश होता है।

वर्षों से चली आ रही परम्परा में यदि कोई बदलाव लाता है तो उसे सरलता से स्वीकार नहीं किया जाता है। समय के चलते सबसे पौराणिक ग्रन्थ को भुला चुके समाज में उसी नाट्यशास्त्र के तत्वों को उजागर करना अपने आप में एक बड़ी चुनौती समान है, और इस कार्य में जुटे हर विद्वान, गुरुजन, नृत्यकारों को सरलता से स्वीकार नहीं किया जाता। कई वर्ष तक उन्हें अपनी बात को प्रस्तुत करने तथा इस तथ्य को साबित करने में बड़ा समय लगा है। मार्ग में आने वाली अनेक कठिनाईयों से होकर भी कई नृत्यरत साधकों ने अपने अथक तथा अविरल प्रयास किए हैं।

नाट्यशास्त्र के इन महत्वपूर्ण तथ्यों का प्रयोग भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों में होना चाहिए। ऐसा मत रखने वाले विभिन्न नृत्य शैलियों के विद्वान् जैसे पद्मभूषण डॉ0 पद्मा सुब्रमह्मण्यम, पद्मभूषण डॉ0 कनक रेले, कथक में डॉ0 शमा इत्यादि ने अपने प्रयास जारी रखे हैं। वर्षों तक जिन तत्वों को अस्वीकार किया गया, उन तत्वों को आज युवा पीढ़ी ने खुले हाथों से स्वीकार किया है, नाट्यशास्त्र के आंगिक अभिनय को पुर्नजीवित करने वाले भिन्न–भिन्न कलाकारों के उन तत्वों का प्रयोग भिन्न स्वरूपों में किया है उदाहरण जैसे कि डॉ0 पद्मा जी के अनुसार निरूपमा राजन एक बेहतरीन भरतनाट्यम् कलाकारा हैं, जो पद्मा जी की शिष्या सुन्दरीनारायना की शिष्या हैं, निरूपमा जी ने देशी पाद संचालन के साथ शास्त्रीय हस्तों का प्रयोग करके एक प्रस्तुतिकरण दिया है। डॉ0 पद्मा सुब्रह्मण्यम कहती हैं जो पाद संचालन भरतनाट्यम् के आडवु में प्रयोग में किया जाता है, उसके साथ नाट्यशास्त्र में वर्णित नृत्त हस्त, रेचक इत्यादि का सुन्दर प्रयोग निरूपमा जी द्वारा किया गया

है।[1] क्योंकि परिवर्तन इस संसार का नियम है और 'हर पहला बिन्दु हर आखरी बिन्दु के बाद आता है' इस नियम के अनुसार पौराणिक रीति–रिवाज, कला, समझ या ज्ञान समय के चक्र में परिवर्तित होते हुए फिर एक बार अपने मूल की ओर बढ़ते हैं। इस नियम के अनुसार भरनाट्यम् नृत्य शैली के कलाकार भी अपने मूल स्वरूप की ओर मुड़े हैं और इसी कारण नाट्यशास्त्र की इतने वर्षों फिर एक बार लोकप्रियता प्राप्त हुई।

भरतनाट्यम् शास्त्र में आंगिक अभिनय का प्रयोग जिन अलग–अलग अंगों के द्वारा बताया गया है उन अंगों का प्रयोग भरतनाट्यम् में आज भी किया जाता है किन्तु उसका परिचय भिन्न शब्दों में या प्रादेशिक भाषा में किया जाता है, जैसे भरतनाट्यम् में उद्घट्टित पाद का प्रयोग देखने में मिलता है। उद्घट्टित पाद का अर्थ होता है पंजे के बल खड़े होना और बाद में एड़ी से भूमि को स्पर्श करना या पटकना। इसे उदघट्टित पाद कहा जाता है। इसे तृतीय मध्यम गति में संयोजित किया जाता है। यह भरतनाट्यम् में प्रवर्तमान आडवुओं में से उद्घट्टित आडवुओं में संक्षिप्त आडवु (तई हत तई हित) किया जाता है।

समपाद की व्याख्या नाट्यशास्त्र में इस प्रकार दी गई है जो स्वाभाविक रूप से समतल भूमि पर पैर रखकर जिसमें दोनों पैर एक दूसरे के समान रखे जाते हैं, वैसे स्थिति को समपाद कहते हैं। यह स्वाभाविक स्थिति हर नृत्य शैली में कहीं न कहीं प्रयोग किया जाता है और भरतनाट्यम् में तइया तई हित जैसे आडवु में प्रयोग किया जाता है इसके उपरान्त भरनाट्यम् में समपाद

[1] https://www.fb.watch/18xwxu_xsfc/

स्थिति में पैरों को जमीन के साथ पटकते हुए आगे या पीछे जाना है या मंच पर संचकरण करना इन करणों के लिए भी प्रयुक्त होता है।

नाट्यशास्त्र में अग्रतल पाद के बारे में बताया गया है। अग्रतल संचरण का कुछ ऐसा बताया गया है कि यदि एड़ी उठी हुई हो तो और अंगूठा आगे की ओर फैला हुआ हो तथा उंगलियां झुकी हुई हों तो उसे अग्रतल संचरण नामक पाद से जाना जाता है। इस अग्रतल पाद का उपयोग ''ता तई तई तत्'' (पक्कम आडवु), नट्टआडवु, मण्डी आडवु, ''तत् तई ताहा'' इत्यादि में इसका प्रयोग किया जाता है। भ्रमरी तथा गति में भी अग्रतल संचरण का प्रयोग होता है। इसके उपरान्त विभिन्न भ्रमरी में भी अग्रतल का प्रयोग प्राप्त होता है।

अंचित पाद का विवरण देते हुए नाट्यशास्त्र में कहा गया है कि एड़ी भूमि पर टिकी रहनी चाहिए और पंजा ऊपर उठा हो तथा उंगलियाँ सिकोड़ी हुई हों तो अंचित पाद कहा जाता है। अंचित पाद का प्रयोग चलने, घूमने तथा चारी के प्रदर्शन में भी किया जाता है। भरतनाट्यम् में नाट्टआडवु तथा ''तत् तई ताम'' जैसे विभिन्न आडवुओं में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

कुंचित पाद के बारे में बताया जाता है कि जिसमें एड़ी उपर उठाई जाती है तथा उंगलियां सिकुड़ी हुई हैं और पैर का आधा भाग झुका हुआ रहे तो यह कुंचित पाद होता है। भरतनाट्यम् में भगवान नटराज की भंगिमा दिखाते हुए कंचित पाद रहता है और एसी कई कृतियों में नृत्य को दिखाते हुए पैरों को फेंकने जैसा प्रयोग में आता है तब वहाँ कुंचित पाद किया जाता है। नाट्यशास्त्र में वर्णित चारियों का महत्व विशेष है, उन्हीं चारियों का प्रयोग

भरतनाट्यम् में किया जाता है, चारी शब्द का अर्थ ''चाल'' होता है। सामान्यतः अलग–अलग पात्रों की चाल भिन्न–भिन्न विशेषताओं लिए होती है और उसी से उस पात्र की पहचान होती है। कभी–कभी नृत्य की अलग शैलियों की भी अपनी–अपनी चलन में धारित किया हुआ होता है, जिससे वह नृत्य शैली दूसरी नृत्य शैली से भिन्न दिखाई पड़ती है। सरल शब्दों में कहा जाए तो चारी चलने का पर्याय है और इसी कारण नाट्यशास्त्र में भूमिचारी और आकाशचारी को पर्याय मिलता है। भूमिचारी भूमि पर चलने वाले जीवों के स्वाभाव को दिखाती है, इस प्रकार नाट्यशास्त्र में 16 भूमिचारी का वर्णन मिलता है तथा 16 आकाशचारी का वर्णन भी प्राप्त होता है जो उपर उठने वाले या चलने वाले या आकाश में उड़ने वाले जीवों से संलग्न हैं। 16 भूमिचारी के नाम इस प्रकार हैं– 1. समपाद, 2. स्थितावर्ता, 3. शकटास्य, 4. अध्यर्धिका, 5. चाषगति, 6. विच्यवा, 7. एलकाक्रीडिता, 8. बद्धा, 9. उरूद्वृता, 10. अड्गिता, 11. उत्स्पन्दिता, 12. जनिता, 13. स्यन्दिता, 14. अपस्यन्दिता, 15. समोत्सारित, 16. मत्तल्ली।

16 आकाशचारी के नाम इस प्रकार हैं –1. अतिक्रान्ता, 2. अपक्रान्ता, 3. पार्श्वक्रान्ता, 4. ऊर्ध्वजानु, 5. सूची, 6. नुपुरपादिका, 7. डोलापादा, 8. आक्षिप्ता, 9. अविद्धा, 10. उद्वृत्ता, 11. विद्युत्भ्रान्ता, 12. अलाता, 13. भुजंगत्रासिता, 14. हरिणप्लुता, 15. दण्डपादा, 16. भ्रमरी।

भरतनाट्यम् एकल शास्त्रीय नृत्य शैली के रूप विकसित हुआ है। शकटास्याचारी वैसे तो भरतनाट्यम् से किसी भी आडवु का हिस्सा नहीं है किन्तु अभिनय के तत्वों को बताने के लिए शकटास्या का प्रयोग किया जाता है और भरतनाट्यम् में ज्यामितीय के नियम अनुसार अंगों के संचालन किए

जाते हैं। ज्यादातर रेखा, चित्रस्य कोण, त्रिकोण, वर्तुलाकार, अर्द्धवतुलाकार इत्यादि आकार दिखे उस तरह भरतनाट्यम् के हस्त एवं पाद संचालन किए जाते हैं। इसलिए इसमें अध्यर्धिकाचारी का प्रयोग किसी भी आडवु में सीधा–सीधा प्रयोग देखने को नहीं मिलता क्योंकि अध्यर्धिकाचारी त्रिभंग स्थिति में की जाती है जबकि भरतनाट्यम् नृत्य शैली द्विभंग के नियम पर आधारित है।

चार्षगति चारी में जिस प्रकार अग्रतल संचरण का प्रयोग किया जाता है तथा पैरों की स्थिति बनती है वैसे ही कई आडवु में इस स्थितियों का प्रयोग किया जाता है, किन्तु कभी इनका प्रयोग प्रत्यक्ष तो कभी परोक्ष रूप में किया जाता है।

विच्यवाचारी अग्रतल संचारण में की जाती है इसका प्रयोग कई आडवुओं में किया जाता है। एलकाक्रीडिता अग्रतल पर घुटनों में से बैठ कर की जाने वाली चारी है, जिसका सीधा सरोकार आडवुओं में नही दिखता, किन्तु अभिनय पक्ष में एलकाक्रीडिता का स्थान अच्छा (प्रमुख) मिलता है।

बद्धा जैसी चारी में कटि का प्रयोग किया जाता है, जबकि भरतनाट्यम् से कटि का प्रयोग नहीं किया जाता इसलिए बद्धाचारी किसी आडवु में सीधे–सीधे प्रयोग नहीं की जाती, परन्तु अभिनय करने के लिए या सौन्दर्यबोध करवाने के लिए बद्धाचारी का प्रयोग हो सकता है।

उरूयवृत्ताचारी का प्रयोग भरतनाट्यम् में कई जगह पर किया जाता है। उसको प्रत्यालीढ़ की स्थिति में भी प्रयोग किया जाता है। आंगिता का प्रयोग

भी आडवु में नहीं किया जाता। उत्स्पन्दिता प्रत्यक्ष रूप से नृत्य में प्रयोग नहीं प्राप्त होता है तथा अभिनय में भी इसका उपयोग नहीं किया जाता।

जनिता भरतनाट्यम् में अनेक बार प्रयोग में आने वाली चारी है। (तेरीय आडवु) ''तत् तई ताहा'' तथा (पक्कम आडवु) के प्रभेदों में जनिता का प्रयोग किया जाता है।

स्यन्दिता और अपस्यन्दिता दोनों ही चारी करीब–करीब एक साथ में प्रयोग में आती है। भरतनाट्यम् में किसी आडवु में प्रत्यक्ष उपयोग नहीं होता है, किन्तु अभिनय पक्ष से प्रदर्शन के लिए इनका प्रयोग किया जाता है जैसे–राम का धनुष उठाना यह दिखाने के लिए इस चारी का प्रयोग किया जाता है।

समोत्सरीतमतल्ली तथा मतल्ली इन दोनों चारियों का प्रयोग भरतनाट्यम् में नहीं होता क्योंकि इन चारियों में कटि प्रदेश का उपयोग किया जाता है तथा कुंचित पाद का भी प्रयोग किया जाता है और समोत्सरी मतल्ली या मतल्ली कुछ समय पहले तक भरतनाट्यम् में स्वीकार नहीं की गई है ऐसा माना जाता है कि ये दो चारियां जिसमें कटि का प्रयोग होता है तथा कुंचित पाद का प्रयोग होता है जो कि भरतनाट्यम् के निबद्ध स्वरूप से अलग है, इस कारण से उनका प्रयोग भरतनाट्यम् में नहीं किया जा सकता।

पुरानी परम्परा को पुर्नजीवित करना यह सदियों से किया जाने वाला प्रयास है, इससे नृत्य सन्दर्भ में देखा जाए तो भरतनाट्यम् जो कि नवीन शैलियों में जिसकी गणना होती है, इसलिए उसमें प्रयुक्त वर्णमाला देशी या प्रदेशी स्वरूप देखी जाती है। भरतनाट्यम् की जो वर्णमाला है वह मूल आधार

आडवु है। इन आडवुओं को सदियों तक अपनी–अपनी तालीम के अनुसार अलग–अलग बानी/मन्दिरों की देवदासियाँ करती रही है। इसमें सबसे बड़ा परिवर्तन तब आया जब यह विधा दासीअट्टम् से भरतनाट्यम् नाम से जाना गया और इतिहास इस बात की पुष्टि करता है कि तंजौर में चेन्नैया, पौन्नैया, वड़ीवेलु, शिवानन्द, चारों भाईयों ने इस नृत्य शैली को भरतनाट्यम् नाम दिया तथा इसके आडवु का वर्गीकरण किया तब उसमें प्रस्तुत होने वाले शब्द देशी थे। इसका यह अर्थ होता है कि नाट्यशास्त्र में उन शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता जो प्रादेशिक भाषा में उपयोग में लिए जाने लगे। उदाहरण–अरईमण्डी, जिसे अर्द्धमण्डल या आयतमण्डल के नाम से शास्त्रों में जाना गया है, तब प्रादेशिक भाषा में उसका नाम अरईमण्डी होता है। इस प्रकार अरईमण्डी मूल मण्डी या इस स्थिति को मूरूमण्डी के नाम से जाना जाता है। वैसे अपनी ऊँचाई से 1/3 तीसरे भाग तक बैठना जिसे मूरूमण्डी के नाम से जाना जाता है। मण्डी शब्द भी एक प्रादेशिक शब्द है, उसी प्रकार जो शोल्ल बने, जिसका प्रयोग नृत्य में होता था और उसके बाद आडवु में किया जाने लगा, व सारे नृत्त के शोल्ल या बोल माने जाने लगे। मृदंग द्वारा बजाए जाने वाले शब्दों के नाद उत्पन्न हो रहा था, उन्हीं के ऊपर आधारित वर्णमाला को भरतनाट्यम् के आडवु के लिए प्रयुक्त किए गए, जबकि भरत के नाट्यशास्त्र में देखा जाए तो वहाँ ऐसे बोल हमें नहीं प्राप्त होते।

ukV~;'kkL= dh pkfj;ksa dk HkjrukV~;e~ esa gksus okyk lh/kk iz;ksx %&

किसी भी शास्त्रीय नृत्य शैली में चलन का अपना महत्व होता है, चलन अर्थात् चलना और चलने की क्रिया को भिन्न–भिन्न नृत्य शैलियों में विविध नामों से जाना जाता है, जैसे–चारी, चाली, नडै, चाल इत्यादि इसका सीधा

तात्पर्य यह होता है कि किसी भी नृत्य शैली में चलने की क्रिया अनेक आशयों से की जाती है, जो बहुत महत्वपूर्ण है।

नाट्यशास्त्र के उपरान्त नृत्य विधा विषयवस्तु पर लेकर देखे गए सभी ग्रन्थों में चारी का महत्व दिखता है। चारी का सामान्य अर्थ है–पैर, जंघा, उरू तथा कटि इत्यादि अंगों की एकसाथ चलनात्मक चेष्टा अर्थात् इन सभी अंगों के प्रयोग से निर्दिष्ट पद्धति से चलने की क्रिया को चारी कहते हैं। नाट्यशास्त्र में जो 16 आकाशचारी बताई गई हैं उनका भी प्रयोग कहीं न कहीं भिन्न तरीके से भरतनाट्यम् में किया जाता है और अन्य कुछ चारियाँ जिनका प्रयोग भरतनाट्यम् में नहीं किया जाता या उनका प्रयोग करने से भरतनाट्यम् शैली के सौन्दर्य में बढ़ोत्तरी हो सकती है।

भूमिचारी में प्रथम चारी समपाद है, जिसका प्रयोग भरतनाट्यम् में अनेक प्रकारों से की जाती है। समपादचारी नृत्त जैसे कि–अलारिपु, जतिस्वरम्, तिल्लाना में एक विभाग को दूसरे विभाग से अलग करने के लिए बीच में किया जाता है। शब्दम् जैसी कृति में अभिनय के विभाग से हटकर नृत्त यानि की तीरमानम् को दिखाने से पहले की जाती है, उसी प्रकार वर्णम् में भी नृत्त के पहले समपादचारी का प्रयोजन किया जाता है। इसके उपरान्त अभिनय की विविधता में भी समपादचारी का प्रयोग किया जा सकता है। स्थितावर्त्ता चारी नृत्य में भरतनाट्यम् के प्रयाग में नहीं आती किन्तु अभिनय के विभिन्न तथ्यों को दिखाने के लिए स्थितावर्त्ता चारी का प्रयोग किया जाता है जैसे कि नायिका की ललित संचालन या लास्य भाव दिखाने के लिए स्थितावर्त्ता चारी का प्रयोग किया जाता है। अध्यर्धिकाचारी का सीधा प्रयोग भरतनाट्यम् में नहीं किया जाता, किन्तु कुछ जगह पर यदि समर्पण भाव दिखाना या पार्श्व से

झुकाव दिखाना हो तो इसका प्रयोग किया जाता है, खासकर जतिस्वरम् तथा तिल्लाना में कई बार मईआडवु करते समय अध्यर्धिकाचारी का प्रयोग किया जाता है, उदाहरण—अध्यर्धिकाचारी जो लास्य तत्वों को उजागर करने के लिए प्रयुक्त किया जाए तो वह उसकी सौन्दर्य में वृद्धि करता है। इस अध्यर्धिकाचारी के त्रिभंग स्वरूप में किसी भी देवी या नायिका को दिखाना, अर्धनारीश्वर के स्वरूप को दिखाना, किसी प्रश्न को बताना इत्यादि किसी आशय से यदि अध्यर्धिकाचारी का प्रयोग किया जाता है तो वह भरतनाट्यम् का मूल स्वरूप बचाते हुए विविधता में वृद्धि करता है।

चाषगतिचारी का प्रयोग भी मई आडवु में भरतनाट्यम् में देखा जाता है। विच्यवाचारी का प्रयोग विविधतापूर्ण कई जगह पर किया जाता है, जिसमें दोनों पंजों के ऊपर (अग्रतल से) खड़े रहकर तालबद्ध स्वरूप से उसे पटका जाता है। इसे नृत्त तथा अभिनय दोनों में किया जाता है। अभिनय में गति दिखाने के लिए या ऊँची वस्तु के लिए और दौड़ने के लिए विच्यवाचारी का प्रयोग किया जाता है। ऊँचे पेड़ों से फल—फूल तोड़ने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। बद्धाचारी का सीधा प्रयोग भरतनाट्यम् में नहीं होता है क्योंकि भरतनाट्यम् के वर्तमान स्वरूप में कटि के विविध प्रयोगकारों का उपयोग नहीं किया जाता, किन्तु बद्धाचारी का उपयोग किया जाए तो भरतनाट्यम् में लास्य और स्त्रियोचित् पद संचालन आकर्षित स्वरूप से दिखाया जा सकता है। उरूदवृत्ता तथा आंगिताचारी का सीधा प्रयोग भरतनाट्यम् में नहीं मिलता। उत्स्पन्दिताचारी भी भरतनाट्यम् में महत्व नहीं रखी जाती है। जनिता एक ऐसी चारी है जिसका प्रयोग विभिन्न प्रकार से किया जाता है, जनिताचारी कई आडवु जैसे—तैरीय आडवु, पक्कम आडवु में भी की जाती है तथा अभिनय में

गति या विस्तार दिखाने के लिए भी की जा सकती है। स्यन्दिता, अपस्यन्दिता, समोत्सरीत मतल्ली या मतल्ली का प्रयोग भरतनाट्यम् में देखने को नहीं मिलता, किन्तु यदि इसका प्रयोग अभिनय पक्ष में किया जाए तो वह सौन्दर्य प्रधान हो सकता है।

आकाशचारी भरतनाट्यम् की मूल स्थिति आयतमण्डल के समान है, इस कारण उसके पद संचालन दाहिनी तथा बायें तरफ की जाती हैं और घुटनों को भी दाहिने और बायें ओर रखा जाता है, जबकि अतिक्रान्ताचारी में एक पैर को कुंचित करके ऊपर उठाया जाता है, जिसमें घुटना सामने की ओर रखा जाता है, जिससे बड़े कदम लिए जाए तो वह अतिक्रान्ताचारी बनती है। यह भरतनाट्यम् के नृत्त पक्ष में नहीं किया जाता या किसी आडवु में इसका प्रयोग नहीं मिलता, परन्तु अतिक्रान्ताचारी के समान ही चलन अभिनय पक्ष में सामान्यतः देखा जाता है। अपक्रान्ताचारी पुष्पांजलि, मल्लारी तथा कौतुवम् जैसे कृतियों में वर्षों से देखने को मिलती है क्योंकि वलन क्रिया भरतनाट्यम् के आंगिक का एक पक्ष बना हुआ है, इस कारण अपक्रान्ताचारी का प्रयोग नृत्त एवं अभिनय में देखा जाता है।

पार्श्वक्रान्ताचारी भी दाहिने ओर बायें ओर होने वाले चलन को दर्शाती है, जिसमें घुटने को ऊपर उठाकर दूर फैलाया जाता है और भूमि पर रखकर उस दिशा में सरकाया जाता है, जिसे अभिनय पक्ष में कई बार देखा जाता है।

भरतनाट्यम् में जिस आंगिक क्रियाओं का एक निश्चित ढांचा बनाया गया है, वह ढांचा विविध आडवुओं के ऊपर आधारित है फिर भी ऐसी कई क्रियाएँ हम भरतनाट्यम् की विविध शैलियों में देख पाते हैं जो उससे भिन्न हो

तथा नाट्यशास्त्र के वर्णित चारियों से मिलती–जुलती हों, जिसके बारे में नर्तक अनभिज्ञ भी होता है। जैसे–उर्ध्वजानुचारी का कोई प्रयोग हमें भरतनाट्यम् के किसी भी आडवु में नहीं देखने को मिलता है, लेकिन जिसका उपयोग अभिनय के जरूरत अनुसार हमेशा से किया जाता है, उदाहरण–कालियामर्दन जैसी स्थिति दिखाने के लिए उर्ध्वजानु का प्रयोग किया जाता है या शिव का नर्तन दिखाने के लिए भी उर्ध्वजानु का प्रयोग किया जाता है।

नुपूरपादिका एक ऐसी चारी है जिसका कोई सीधा प्रयोग हम भरतनाट्यम् में हम नहीं देखते, किन्तु वह अभिनय पक्ष में हमें प्रत्येक स्थान पर दिखाई देती है। डोलापादा भी एक ऐसी ही चारी है जिसका प्रयोग किसी लचीली वस्तु को दिखाने या हाथी की मतचाल को दिखाने इत्यादि वर्णन के लिए अभिनय पक्ष में सामान्यतः किया जाता है।

आक्षिप्ताचारी भी भरतनाट्यम् के नृत्त में समाहित नहीं है, तथा अभिनय पक्ष में भी सामान्यतः नहीं देखी जाती। आविद्धा, उद्धवदिता, विद्युतभ्रान्ता तथा अलातचारी सामान्यतः भरतनाट्यम् में नहीं देखी जाती, किन्तु विद्युतभ्रान्ताचारी जैसा उद्धत प्रयोग कहीं–कहीं देखने को मिलता है। भरतनाट्यम् में जाने अनजाने एक चारी का प्रयोग अवश्य किया जाता है वह है भुजंगत्रासिता। भुजंगत्रासिताचारी को वैश्विक फलक पर एक–एक जान–मानी चारी माना जाता है, जिसका नाम न जानते हुए भी भगवान नटराज के स्तुति दिखाने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। हरिणीप्लुताचारी जैसे पदसंचालन नृत्त पक्ष में कहीं देखने को नहीं मिलता, अभिनय पक्ष में इसका प्रयोग कम या ज्यादा प्रमाण में उपयोग होता दिखाई देता है। नाट्यशास्त्र में वर्णित भ्रमरीचारी का प्रयोग ठीक उसी प्रकार नहीं किया जाता, जैसे नाट्यशास्त्र में

वर्णन किया है, किन्तु भ्रमरी का विविध प्रकार से उपयोग नृत्त के कई आडवु में तथा अभिनय के कई पक्षों को दिखाने के लिए किया जाता है।

नाट्यशास्त्र में वर्णित करण प्रायः की गई चर्चा के अनुसार किसी वस्तु या व्यक्तिविशेष लक्षणों को प्रदर्शित करते हैं, जिनमें कुछ करण भिन्न–भिन्न पक्षियों, प्राणियों जैसे कि भुजंगत्रासित रेचित, भ्रमर, चतुर, भुजंगचित, तलवृश्चिक, वृश्चिककृट्टित, गजक्रीडित, मयूरललित, हरणप्लुत इत्यादि उनकी भाव–भंगिमाओं को दर्शाते हुए प्राप्त होते हैं। कुछ करण रंगमंच से जुड़े तथ्यों को समर्पित हैं, तो कुछ वीररस से संलग्न दिखाई देते हैं। नाट्यशास्त्र में करणों से बनते अथवा करणों में प्रयुक्त होने वाले अन्य कुछ तत्वों का महत्व भी अधिक है, जैसे कि नाट्यशास्त्र में बताए गए चार प्रकार के रेचक– 1. हस्त रेचक, 2. कटि रेचक, 3. ग्रीवा रेचक, 4. पाद रेचक। जिसके प्रयोग से भरतनाट्यम् नृत्य को एक सुन्दर स्वरूप मिल सकता है। विविध करणों के मेल से बनने वाले अंगहारों का भी यदि प्रयोग वर्तमान भरतनाट्यम् नृत्य शैली की नृत्य संयोजनों में भी किया जाए तो अपने सुन्दरतम् स्वरूप की चरम सीमा को प्राप्त कर सकता है। सदियों पूर्व जब नाट्यशास्त्र लिखा गया अथवा नाट्यशास्त्र में वर्णित नाट्य तत्वों का प्रयोग किया जा रहा होगा, तब नाटक के अन्दर किसी एक विषयवस्तु या कथावस्तु को प्रयुक्त करने के लिए नट या नाट्यकार इन चारियों, करणों, अंगहारों का प्रयोग करते थे, आज उन नाट्य स्वरूप का स्थान नृत्य नाटिका ने ले लिया है। यह नृत्य नाटिकाएँ रूपकों के पश्चात् स्वरूप लेने वाले उपरूपकों में से नाटिका स्वरूप से साम्यता रखती है क्योंकि वर्तमान में नृत्य शैलियों ने अपना अलग स्वरूप प्राप्त किया है, जिसके अनुसार करणों के मेल से बनने वाले अंगहारों का प्रदर्शन करने के द्वारा

वर्तमान समय में कथावस्तु को नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है और नाट्य से विभाजित हुए नृत्य स्वरूप को अत्यन्त सरलता से और अत्यन्त कम समय में लोकप्रियता के शिखर पर दिखाया गया है।

किसी भी कला के प्रस्तुतिकरण के आधार पर उस समय में विद्यमान पशु–पक्षी, देवी–देवता, मान्यताओं, व्यक्ति, समाज, स्वभाव, भाव पक्ष इत्यादि का अनुमान लगा सकते हैं, अतः अंगहारों के उपरान्त नाट्यशास्त्र में दिए गए पिण्डीबन्धों के भी वर्तमान भरतनाट्यम् के द्वारा प्रदर्शित किए जाने वाली परिस्थिति तथा विविध पात्रों के बारे में सरलतापूर्वक जानकारी प्राप्त हो सकती है।

भरतनाट्यम् में नडै का चलन जिस प्रकार से किया जाता है, उससे भिन्न–भिन्न स्वरूप हमें करणों के माध्यम से प्राप्त हो सकता है। करणों में प्रयुक्त होने वाली चारियों के माध्यम से भी प्राप्त होता है। नडै अर्थात् चारी या चलन भरतनाट्यम् के वर्तमान स्वरूप में एक–एक पैर क्रमशः उठाकर पार्ष्णि के बल पर भूमि पर रखा जाता है या पीछे की ओर चलने के लिए अग्रतल का प्रयोग किया जाता है, जबकि नाट्यशास्त्र में वर्णित बद्धाचारी का प्रयोग यदि भरतनाट्यम् में किया जाए तो उसके सौन्दर्य में वृद्धि करता है। लास्य, श्रृंगार, सौन्दर्य, लावण्य दिखाने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसके उपरान्त चाषगति चारी का प्रयोग भी इन्हीं अवयवों से किया जा सकता है। भरतनाट्यम् में आगे या पीछे की ओर गति या चलन दिखाने के लिए दोनों पैरों को समपाद अवस्था में रखते हुए एक समान वजन से भूमि पर क्रमशः मारा जाता है और इस क्रिया द्वारा आगे या पीछे की तरफ बढ़ा जा

सकता है। इसकी जगह यदि जनिताचारी का प्रयोग किया जाए तब भी इसके सौन्दर्य में वृद्धि हो सकती है।

नृत्य में तिल्लाना या पुष्पांजलि अथवा मल्लरी जैसी कृतियों में जहाँ मेई आडवु का प्रयोग किया जाता है, वहीं मेई के सात्विक अर्थ अनुसार शरीर के द्वारा किसी एक दिशा में झुककर किए जाने वाले आडवु जिसमें द्विभंग का प्रयोग देखा जाता है। यदि भरतनाट्यम् के मई आडवु में द्विभंग के उपरान्त त्रिभंग का उपयोग किया जाए तब वह सौन्दर्यबोध को बढ़ाने का कार्य कर सकता है।

भरतनाट्यम् नृत्य में वर्तमान स्वरूप के अन्दर समपाद रखते हुए पैरों के पूरे पंजे अर्थात् उसके सम्पूर्ण तल का प्रयोग किया जाता है, जिसको भूमि पर सीधा पटका जाता है, इसके अलावा (''अग्रतल'' तथा ''पार्ष्णी'') का भी प्रयोग किया जाता है, जबकि नाट्यशास्त्र में वर्णित अन्य प्रतिरूप का उपयोग भरतनाट्यम् में किया जाए, जैसे दोनों पंजों और दोनों बाजुओं का प्रयोग जो कि उत्स्पन्दिता भूमिचारी में किया जाता है। उस प्रयोग से भरतनाट्यम् नृत्य में वैविध्य प्राप्त हो सकता है, प्रायः यह सारे प्रयोग कथक नृत्य में वर्तमान समय में भी देखे जा सकते हैं। कुछ अंश ओडिसी नृत्य में भी देखने को मिलते हैं, किन्तु भरतनाट्यम् में इसका प्रयोग नहीं किया जाता। नाट्यशास्त्र वर्णित करणों के प्रयोग में जिस प्रकार अंग संचालन किया जाता है या स्थानक, मण्डल, चारियों का प्रयोग किया प्रकार किया जाता है उससे नृत्यकार के पूरे शरीर का इस प्रकार सन्तुलन बनता है, जिससे शरीर के किसी भी अंग में हानि नहीं पहुंचता दूसरे शब्दों में कहे तो करणों के प्रयोग से शरीर के विविध अंग संचालनों में ऐसा संतुलन पाया जाता है, जिससे नर्तक के घुटने, पिण्डियाँ

इत्यादि अंगों में भरतनाट्यम् की अपेक्षा कम तकलीफ एवं हानि होता है। भरतनाट्यम् का मूल स्वरूप तथा अंग संचालन का जिस प्रकार संयोजन किया गया है, उसमें महत्तम नर्तकों को घुटने तथा पिण्डियों का दर्द एवं उसे घिसे जाने की शिकायत आम तौर पर रहती है। जबकि करणों के संयोजन में शरीर के विविध अंग संचालन का एक सन्तुलित संयोजन हमें देखने को प्राप्त होता है।

अंचित तथा कुंचित दोनों स्थितियों का भी प्रयोग नृत्य में किया जा सकता है। भरतनाट्यम् की वर्तमान नृत्त संयोजन में आडवुओं के साथ कुछ चारियों का प्रयोग भलीभांति मेल खाता है। यदि भरतनाट्यम् में इसे प्रयोग किया जाए तो उसकी नींव में सौन्दर्यवर्धन परिवर्तन हो सकता है, जिसमें जनिता, स्यन्दिता, अपस्यन्दिता, उत्स्यन्दिता, चाषगति, स्थितावर्ता, बद्धा तथा एलकाक्रीडिता इन चारियों का प्रयोग विविध वर्तमान आडवुओं के हस्तों के साथ किया जा सकता है, जिससे एक वैविध्यपूर्ण संयोजन हमें प्राप्त हो सकता है। आकाशचारी–नूपुरपादिका, आक्षिप्ता, उर्ध्वजानु, सूचीपाद, आविद्धा तथा भुजंगत्रासिताचारियों का भी प्रयोग आडवु के हस्तों के साथ मिलाकर वैविध्यपूर्ण संचालन के स्वरूप को पाया जा सकता है।

वर्तमान भरतनाट्यम् में किसी भी नृत्य में या नृत्य संयोजन में यदि समूह को दर्शाना हो तो अधिकतर एकल नृत्य की तरह प्रयोग किया जा रहा है, जिससे मंच पर एक से अधिक नृत्यकार मौजूद रहते हैं। किन्तु उनके नृत्य संयोजन का ढंग एक जैसा रहता है, उसमें वैविध्य लाने के लिए कभी–कभी विविध दिशाओं का प्रयोग किया जाता है। सभी नर्तकों के बीच योग्य अन्तर दिखाकर भी प्रयोग किया जाता है। एक ही पात्र, एक ही समय, एक ही

क्रियाकलाप एकल नृत्य के स्वरूप में भी एक से ज्यादा नर्तकों के द्वारा एक ही मंच पर दिखाया जाता है, किन्तु पिण्डीबन्ध का जो स्वरूप हमें नाट्यशास्त्र में मिलता है, उसका न्यूनतम प्रतिशत वर्तमान भरतनाट्यम् में हो रहा है अर्थात् पाँच मिनट तक एक साथ, एक ही समय, एक मंच पर जब होते हैं तब पांचों के नृत्य संयोजन से एक कार्य, एक पात्र या एक समय दृश्यमान हो जिसे पिण्डीबन्ध कहा जाता है, जिसका प्रयोग निहिवत देखा जाता है। उदाहरण–यदि मयूर दर्शाना हो तो पाँच नृत्यकार मयूर की विविध दर्शाएँ तो मंच पर दिखाते हैं। ज्यादा करके पाँचों एक जैसी क्रियाकलाप एक साथ करते हैं या वह अलग–अलग या अपने–अपने दृष्टिकोण से मयूर को मंच पर दर्शाते हैं किन्तु पाँचों यदि एक साथ मिलकर मयूर के स्वरूप को ऐसे दर्शाएँ जैसे उनमें से यदि किसी एक नर्तक को वहाँ से हटा दिया जाए तो वह मयूर के प्रतिकृति को क्षति पहुँचा सकता है। पिण्डीबन्ध का स्वरूप यदि भरतनाट्यम् में उपयोग में किया जाए तो सही अर्थ में सामूहिक प्रस्तुति की जा सकती है, जिसमें हर नर्तक की अपनी जिम्मेदारी, अपनी सजगता, अपनी समझ तथा अथक परिश्रम का विकास होता है। इसी के साथ समूह कार्य करने में समभाग तथा एक–दूसरे के प्रति सहकार्य की भावना विकसित हो सकती है। ऐसे समूह नृत्यों में पिण्डीबन्धों का प्रयोग करने से एकता का भाव तथा ऐक्य का स्वरूप प्रतिपादित हो सकता है, जिसमें किसी एक व्यक्ति का विशेष महत्व न होकर सभी नृत्यकारों का सामान्य महत्व होता है।

भरतमुनि के अनुसार करणों का प्रयोग नृत्य, युद्ध, बाहु युद्ध दर्शाने के लिए किया जाता है, जिसमें विभिन्न गतियों अथवा चारियों का भी प्रयोग बताया जाता है। कई करण शरीर के विविध स्थितियों पर आधारित है।

जैसे—समनख, स्वस्तिकरेचित, मण्डलस्वस्तिक, कटिछिन्न, अर्द्धरेचित, वक्षस्वस्तिक, पृष्ठस्वस्तिक, कटिसम, आक्षिप्तरेचित, उर्ध्वजानु इत्यादि कुछ करण विविध पशु—पक्षियों या अन्य जीवों पर भी आधारित है। जैसे कि भ्रमर, चतुर, भुजंगत्रासित, वृश्चिक, गरूड़प्लुत, ग्रीधावलीनक, सर्पित, मयूरललित, हरिनप्लुत, करिहस्त, सिंहविक्रीडित, सिंहाकर्षित, एलकाक्रिड़ित, वृषभक्रीड़ित तथा नागपसर्पित इत्यादि करण विविध पशु—पक्षियों के चलन या उनके स्वभाव को प्रस्तुत करते हैं।

वर्तमान भरतनाट्यम् स्वरूप में इन पशु—पक्षियों को दर्शाने के लिए हस्तों का प्रयोग मुख्य रूप से ज्यादा होता है। पद संचालन के नाम पर स्वस्तिक, नडै, तट्टमीट्टु या ज्यादातर किसी भ्रमर या उत्प्लवन का प्रयोग किया जाता है, जबकि नाट्यशास्त्र में वर्णित इन सभी करणों का अपना—अपना विशेष क्रियाकलाप है, यदि इन करणों का प्रयोग प्राकृतिक सौन्दर्य या प्रकृति के इन जीवों को दर्शाने के लिए किए जाए तो भरतनाट्यम् को यथावत रखते हुए भी उसमें अनेक विविधताएँ बढ़ने की सम्भावनाएँ रहती हैं, किसी भी एक वस्तु का वर्णन करने के लिए हमें अनेक प्रकार के विन्यास मिल सकते हैं। विविधताएँ प्राप्त हो सकती है। उदाहरण—यदि सर्प दिखाना हो तो भरतनाट्यम् के वर्तमान स्वरूप में मर्यादित सम्भावनाएँ रहती हैं, जबकि नाग से जुड़े नागासर्पित के अपने क्रियाकलाप के साथ सर्पित करण का एक साथ संयोजन करके सुन्दर प्रयोग भी किया जाता है। इसके उपरान्त मतल्ली, अर्धमतल्ली जैसी अनुरूप चारियों के प्रयोग के साथ भी सर्प या नाग के गतिविधि दर्शायी जा सकती है। इस प्रकार विविध चारियों का प्रयोग विवेक बुद्धि से किया जाए

तथा अनुरूप करणों का प्रयोग विवेक बुद्धि से किया जाए तो भरतनाट्यम् को असरकारक स्वरूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

किन्हीं दो या दो से अधिक करणों के संयोजनों का तात्पर्य अंगहारों से भी हो सकता है। जैसे–नाट्यशास्त्र में बताया गया है कि दो करणों के संयोग से भी एक मात्रिका बनती है तथा दो, तीन या चार मात्रिकाओं से एक अंगहार बनता है, तीन करणों के द्वारा एक कलापक तथा चार करणों से एक मण्डल बनता है एवं पाँच करणों से एक संघातक बनता है। इस प्रकार से अंगहार छः, सात, आठ, नौ करणों के मेल से बनते हैं। इनके भी अनेक प्रभेद दिए गए हैं। यदि भरतनाट्यम् के वर्तमान स्वरूप में इन करणों के उपरान्त अंगहारों का या पिण्डीबन्धों का भी प्रयोग किया जाए तो वह निश्चित ही नवीन सौन्दर्य को धारण कर सकता है। वर्तमान में भरतनाट्यम नृत्य की कृतियों का संयोजन एक विशेष ढाँचे में बंधा हुआ है, जैसे किसी भी एक पंक्ति को दो, तीन, चार या पाँच विविधताओं से उसका विन्यास कर बतलाया जाए। अधिकतर दो से तीन प्रकारों से किसी भी एक पंक्ति को दर्शाया जाता है तथा उसमें किसी संचारी भावों का प्रयोग किया जाता है। संचारी तौर पर किसी कथावस्तु को जोड़ा जाता है जिससे भरतनाट्यम् की अभिव्यक्ति में एक मर्यादा दिखाई देती है, इस मर्यादा को तोड़ते हुए यदि इसका मुक्त स्वरूप से विस्तार किया जाए तो इसकी भावाभिव्यक्ति में अधिक बल मिल सकता है और नाट्यशास्त्र में वर्णित उन तत्वों का यदि भरतनाट्यम् में प्रयोग किया जाए तो वह अभिव्यक्ति मर्यादित न रहते हुए विस्तृत हो सकती है, जिसमें अनेक प्रकार की भावात्मक उतार–चढ़ाव, रस–निष्पत्ति की सम्भावनाएँ दर्शक तथा नर्तक के बीच में ऐक्य की स्थापना तथा भावों का आदान–प्रदान होने की अद्भुत विशेषता बढ़ सकती

है, जिससे दर्शक उन पात्रों तथा भावों के साथ एकात्मक स्वरूप को पाता है या एकाकार होकर रस की प्राप्ति करता है। इसके साथ यदि संगीत की बात की जाए तो वर्तमान स्वरूप की कृतियों में संगीत में भी विविधता नहीं दिखती क्योंकि उन दो–चार प्रकारों से एक ही पंक्ति को दर्शाया जाता है, जिसका विस्तार न होने के कारण सांगीतिक विस्तार का भी क्षेत्र संगीतकारों को नहीं प्राप्त हो पाता। इस वजह से संगीत भी अपनी मर्यादा में बंधा हुआ दिखाई देता है।

गुरुजन द्वारा सुना गया है कि सालों पहले नृत्य का जो स्वरूप होता था या नृत्य के किसी एक कृति का स्वरूप इतना मर्यादित नहीं होता था। उसका विस्तार यदि कलाकारों द्वारा किया जाता तो समय की मर्यादा ना देखते हुए कई घण्टों तक उसकी प्रस्तुति की जाती थी। यदि ऐसा है तो यह माना जा सकता है कि वह कलाकार या नर्तक अमर्यादित वैविध्यपूर्ण शक्ति के धनी होंगे और सभी के मूल में जैसे नाट्यशास्त्र को स्वीकृति मिली। वैसे ही नाट्यशास्त्र के तत्वों को लेकर नृत्य करते होंगे तो इस बात में यह मानना उचित होगा कि उन्हें नाट्यशास्त्र के तत्वों का भलीभांति ज्ञान था और उसी का उपयोग करते हुए वह अपने नृत्य में वैविध्य एवं सौन्दर्य को बनाए रखते होंगे।

वर्तमान भरतनाट्यम् नृत्य शैली के नृत्त या नृत्य दोनों ही स्वरूप में एक विशेष तरह की कठोरता दिखाई देती है, जो कथक, मोहिनीअट्टम्, ओडिसी, सत्रिय नृत्यों की अपेक्षा से ज्यादा प्रमाण में है, जिसकी अपनी एक सौन्दर्यता भी है, जो बेमत नहीं है, किन्तु उसके क्रियाकलापों में रेचकों का समावेश किया जाए तो उसके स्वरूप की सौन्दर्यता में वृद्धि हो सकती है। ताण्डव तथा

लास्य दोनों ही तत्व अपने आप में महत्वपूर्ण हैं तथा भारतीय शास्त्रीय नृत्त की हर शैली में ताण्डव तथा लास्य के अंश कम तथा ज्यादा मात्रा में प्राप्त होते हैं। भरतनाट्यम् नृत्य में लास्य तथा लास्यांगों के प्रयोग देखने को मिलते हैं, किन्तु कहीं–कहीं परम्परा या पारम्परिक शिक्षा के नाम पर जड़तापूर्वक पकड़ के रखा जाता है तथा कथित परम्परा में किसी भी तरह का बदलाव लाने से कई नर्तक या गुरुजन बचते हैं। किन्तु परम्परा वास्तविक स्वरूप ही कालान्तर से सुविधा अनुसार तथा आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते ही आए हैं और इन्हीं परिवर्तनों से परंपराएँ बनती हैं, आगे बढ़ती हैं, बहती रहती हैं और बदलती हैं। किसी भी तरह की अन्मय विचारधारा इन परिवर्तनों के द्वारा बढ़ने वाली सुन्दरता को नहीं रोका जाना चाहिए, ऐसा शोधार्थी का मंतव्य है।